

[2024] 6 एस.सी.आर. 934: 2024 आईएनएससी 425

श्री आर.एस. मेदीरेड्डी तथा अन्य आदि।

बनाम

भारत संघ व अन्य आदि।

(सिविल अपील सं.(एं) 6473-6476/2024)

16 मई 2024

[माननीय न्या. बी.आर. गवई तथा माननीय न्या. संदीप मेहता]

विचारणीय मुद्दा

(i) क्या प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) को एक प्राइवेट कॉर्पोरेट इकाई द्वारा ग्रहण किए जाने के बाद उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अधीन किया जा सकता था; (ii) क्या यहां अपीलार्थीगण को इस तथ्य के कारण अयोग्य ठहराया जा सकता था कि उनकी रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान, नियोजक की प्रकृति एक सरकारी इकाई से एक निजी इकाई में बदल गई थी; (iii) क्या रिट याचिका के निपटान में विलंब को निजी इकाई के विरुद्ध भी अपीलार्थीगण के दावे को बनाए रखने के लिए एक वैध आधार माना जा सकता है।

हेडनोट्स

भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - क्या प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) को एक निजी कॉर्पोरेट इकाई द्वारा ग्रहण किए जाने के बाद उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अधीन किया जा सकता था:

अभिनिर्धारित किया गया: वर्तमान मामले में, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि भारत सरकार ने अपना 100% हिस्सा एक निजी लिमिटेड कंपनी-टी को हस्तांतरित कर दिया है, उसका निजी इकाई पर कोई प्रशासनिक नियंत्रण या गहन व्यापक नियंत्रण समाप्त हो गया है और

इसलिए, विनिवेश के बाद कंपनी को निजी कंपनी द्वारा ग्रहण करने के बाद अब राज्य नहीं माना जा सकता था - इस प्रकार, निस्संदेह, प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) अपने विनिवेश के बाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में एक राज्य या उसका परिकरण नहीं रह गया - एक बार जब प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में राज्य की परिभाषा के अंतर्गत आना प्रविरत हो गया, तो इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं किया जा सकता था - प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल), जो कि पूर्ववर्ती सरकारी एयरलाइन थी, को निजी कंपनी-टी द्वारा ग्रहण कर लिया गया है, निस्संदेह, वह कोई लोक कर्तव्य नहीं निभा रही है, क्योंकि उसने सरकारी कंपनी एयर इंडिया लिमिटेड को वाणिज्यिक परिचालन के उद्देश्य से ग्रहण किया है, और इस प्रकार प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) के विरुद्ध कोई रिट याचिका संधार्य नहीं है। [पैरा 32, 33 और 37]

भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - क्या यहां अपीलार्थीगण को इस तथ्य के कारण अयोग्य ठहराया जा सकता है कि उनकी रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान, नियोजक की प्रकृति सरकारी इकाई से निजी इकाई में बदल गई थी:

अभिनिर्धारित किया गया: प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल)-नियोजक रिट याचिकाओं के दायर होने की तिथि पर एक सरकारी संस्था थी, जिस पर काफी विलंब के बाद निर्णय लिया गया, तब तक कंपनी का विनिवेश हो चुका था और एक निजी कंपनी द्वारा उसका ग्रहण कर लिया गया था - चूंकि, प्रत्यर्थी सं. 3 के नियोजक का विनिवेश हो चुका था और उसने एक निजी संस्था का रूप ग्रहण कर लिया था जो कोई लोक कृत्य नहीं कर रही थी, इसलिए उच्च न्यायालय ऐसी निजी

संस्था को रिट जारी करने के लिए असाधारण रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता था - उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अपीलार्थीगण के उपचार मांगने के अधिकारों की रक्षा करने का ध्यान रखा है और इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थीगण मामले में अनुपयुक्त हैं - केवल इतना है कि अपीलार्थीगण को अपना उपचार मांगने के लिए किसी अन्य फोरम(मंच) का रुख करना होगा - इस प्रकार, प्रश्न अपीलार्थीगण के विरुद्ध निर्णीत किया जाता है। [पैरा 38]

भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - क्या रिट याचिका के निपटान में विलंब को निजी संस्था के विरुद्ध भी अपीलार्थीगण के दावे को कायम रखने के लिए वैध आधार माना जा सकता है:

अभिनिर्धारित किया गया: रिट याचिकाओं के निपटान में विलंब रिट याचिकाओं को जारी रखने और बनाए रखने का आधार नहीं हो सकता था - क्योंकि फोरम(मंच) अर्थात् उच्च न्यायालय जहां रिट याचिकाएं संस्थापित की गई थीं, निजी प्रत्यर्थी को रिट जारी नहीं कर सकता था, जो मध्यवर्ती अवधि में बदल गई थी - इसलिए, यह प्रश्न भी अपीलार्थीगण के विरुद्ध निर्णीत किया गया है। [पैरा 39]

मामला विधि उद्धृत

प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान
[2002] 3 एससीआर 100: (2002) 5 एससीसी 111; अंडी मुक्ता
सद्गुरु श्री मुक्ताजी वनदास स्वामी सुवर्ण जयंती स्मारक ट्रस्ट और
अन्य बनाम वी.आर. रुदानी व अन्य **[1989] 2 एससीआर 697 :**
(1989) 2 एससीसी 691; फेडरल बैंक लिमिटेड बनाम सागर थॉमस
[2003] पूरक 4 एससीआर 121: (2003) 10 SCC 733 - पर
निर्भरता।

कल्पना योगेश धगत के माध्यम से विधिक वारिस बनाम रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड, 2016 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 10186; असुलाल लोया बनाम भारत संघ और अन्य, आईएलआर (2009) 1 दिल्ली 450; तरुण कुमार बनर्जी बनाम भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2008 एससीसी ऑनलाइन बॉम 1899 - अनुमोदित।

पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलू बनाम मोटर एंड जनरल ट्रेडर्स [1975] 3 एससीआर 958: (1975) 1 एससीसी 770; बेग राज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। 5 एससीआर 530: (2003) 1 एससीसी 726; राजेश डी. दरबार और अन्य बनाम नरसिंगराव कृष्णाजी कुलकर्णी और अन्य [2003] पूरक 2 एससीआर 273: (2003) 7 एससीसी 219; कौशल किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। [2023] 8 एससीआर 581: (2023) 4 एससीसी 1; बिन्नी लिमिटेड और अन्य बनाम वी. सदाशिवन और अन्य [2005] पूरक 2 एससीआर 421: (2005) 6 एससीसी 657 - संदर्भित।

महंत पाल सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, 2009 एससीसी ऑनलाइन बॉम 2554; पद्मावती सुब्रमण्यम और अन्य बनाम नागरिक उड्डयन मंत्रालय भारत सरकार अपने सचिव और अन्य द्वारा प्रतिनिधि, 2022 एससीसी ऑनलाइन कर 1706; अशोक कुमार गुप्ता और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य। (2007) एससीसी ऑनलाइन कैल 264 - संदर्भित।

रेजिना (बीयर (हैमर ट्राउट फार्म के रूप में व्यापार)) बनाम हैम्पशायर फार्मर्स मार्केट लिमिटेड [2004] 1 डब्ल्यूएलआर 233 - संदर्भित।

अधिनियमों की सूची

भारत का संविधान।

मुख्य शब्दों की सूची

प्राइवेट लिमिटेड कंपनी द्वारा ली गई पब्लिक लिमिटेड कंपनी; इसके विनिवेश के बाद कंपनी; भारत के संविधान का अनुच्छेद 12; पब्लिक लिमिटेड कंपनी के विनिवेश के बाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के भीतर परिकरण; भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार; रिट जारी करने के लिए असाधारण रिट क्षेत्राधिकार; गैर-उपयुक्त; रिट याचिका के निपटान में विलंब।

से उद्भूत मामला

सिविल अपील क्षेत्राधिकार: सिविल अपील सं. 6473-6476/2024

रि.या. सं. 1770/2011, रि.या. सं. 1536/2013 तथा रि.या. सं. 123 एवं 844/2014 में बॉम्बे उच्च न्यायालय के दिनांक 20.09.2022 के निर्णय एवं आदेश से

के साथ

सिविल अपील सं. 6477 और 6478/2024

पक्षकारगण हेतु उपस्थितियाँ

संजय सिंघवी, वरिष्ठ अधिवक्ता, संदीप सुधाकर देशमुख, सुश्री रोहिणी त्यागराजन, सुश्री शानवी पुनमिया, निशांत शर्मा, अक्षय अरोड़ा, स्वप्निल अनिल वाल्डे, सुश्री नूपुर कुमार, करण नागरथ, अंबुज तिवारी, आर. गोपालकृष्णन, आर सुधींद्र, दत्तात्रय व्यास, शशांक दीक्षित, अपीलार्थीगण हेतु अधिवक्तागण।

सुश्री ऐश्वर्या भाटी, अति.महासॉलि., डॉ. अभिषेक मनु सिंघवी, एस. निरंजन रेड्डी, आर बालासुरमण्यम, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री बी.एल.एन. शिवानी, सुश्री मनीषा चावा, शाश्वत परिहार, अमरीश कुमार, अविष्कार सिंघवी, ऐश्वर्या सिंघवी, सुश्री रुक्मिणी बोबडे, अमित कुमार मिश्रा, अज़ीम सैमुअल, सुश्री मिताक्षरा गोयल, कुणाल चटर्जी, एल निधिराम शर्मा, कौस्तुभ सेठ,

अखिल कुमार कुलश्रेष्ठ, सुश्री अखिला, शिवम सिंघानिया, सुश्री याशिका नागपाल, विवेक कुमार, नावेद अहमद, अमलान कुमार, संतोष कुमार पांडे, संतोष कुमार विश्वकर्मा, देबाशीष मिश्रा, मोहित सिंह, प्रत्यर्थीगण हेतु अधिवक्तागण।

उच्चतम न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

न्या. मेहता,

1. अनुमति अनुदत्त।
2. वर्तमान अपीलें बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा दिनांक 20 सितंबर, 2022 को पारित किए गए सामान्य आक्षेपित निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई हैं, जिसके अंतर्गत अपीलार्थीगण द्वारा दायर चार रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया था, जो प्रत्यर्थी सं. 3 अर्थात् एयर इंडिया लिमिटेड (इसके बाद 'एआईएल' के रूप में संदर्भित) के पूर्व कर्मचारी थे और इसके केबिन क्रू बल के सदस्य थे। अपीलार्थीगण 1980 के दशक के अंत में एआईएल में कार्यरत हुए और वे सभी 2016 और 2018 के बीच सेवानिवृत्त हुए।
3. रिट याचिका सं. 123/2014 और 844/2014 को कथित रूप से वेतन में अवरोध और कर्मचारियों को पदोन्नति न दिए जाने के लिए दायर किया गया था। रिट याचिका सं. 844/2014 में न्यायमूर्ति धर्माधिकारी समिति की रिपोर्ट के क्रियान्वयन हेतु वेतन निर्धारण में विसंगतियों के मुद्दे भी उद्भूत किए गए थे। रिट याचिका सं. 1770/2011 और 1536/2013 वेतन संशोधन बकाया के भुगतान में विलंब और कर्मचारियों को पहले से दिए गए सत्रह भत्तों में से आठ को वापस लेने से संबंधित थी। प्रत्येक रिट याचिका में भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14, 16 और 21 के उल्लंघन का आरोप लगाया गया था। बॉम्बे उच्च न्यायालय

की खंड न्यायपीठ ने दिनांक 20 सितंबर, 2022 के साझा निर्णय और आदेश के ज़रिए उपरोक्त रिट याचिकाओं का निपटान कर दिया और प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) के निजीकरण की मध्यवर्ती घटना के कारण रिट याचिकाओं की असंधार्यता के आधार पर दावा की गई राहत से इनकार कर दिया। फिर भी, कर्मचारी याचीगण को विधि के अनुसार अपने उपचार तलाशने की स्वतंत्रता दी गई।

संक्षिप्त तथ्य:-

4. एयर इंडिया, एयर कॉर्पोरेशन अधिनियम, 1953 के अंतर्गत गठित एक वैधानिक निकाय था। वायु निगम (उपक्रमों का हस्तांतरण) अधिनियम, 1994 द्वारा 1953 के अधिनियम को निरस्त करने के साथ, एयर इंडिया का इंडियन एयरलाइंस में विलय हो गया और निगमन के बाद, प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) पूर्ण रूप से सरकारी स्वामित्व वाली कंपनी बन गई और इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के भीतर 'अन्य प्राधिकरणों' की श्रेणी में आ गई। एयर इंडिया की यह स्थिति उस तिथि तक बनी रही जब प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) के विरुद्ध रिट क्षेत्राधिकार का अवलंब लेते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिकाओं (पूर्वोक्त) का विषय समूह उच्च न्यायालय के समक्ष दायर किया गया था।
5. यद्यपि, दिनांक 08 अक्टूबर, 2021 को भारत सरकार ने घोषणा की कि उसने प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) में अपने 100% शेयर खरीदने के लिए टैलेस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड की बोली स्वीकार कर ली है। इसके बाद, दिनांक 27 जनवरी, 2022 को टैलेस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड के साथ हस्ताक्षरित शेयर क्रय करार के अनुसार, प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) में भारत सरकार के 100% इक्विटी शेयर उक्त निजी कंपनी द्वारा खरीदे गए और प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) का निजीकरण और विनिवेश किया गया। इसलिए, रिट याचिकाएँ संस्थित होने की तिथि पर संधार्य

थीं, परन्तु उच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या वे अंतिम सुनवाई की तिथि तक संधार्य बनी रहें थीं।

6. बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विद्वान न्यायाधीशगण ने *तरुण कुमार बनर्जी बनाम भारत एल्युमीनियम कंपनी लिमिटेड एवं अन्य; महंत पाल सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य; पद्मावती सुब्रमण्यन एवं अन्य बनाम नागरिक उड्डयन मंत्रालय भारत सरकार के सचिव द्वारा प्रतिनिधित्व एवं अन्य*; और दिल्ली उच्च न्यायालय और गुजरात उच्च न्यायालय के कुछ और निर्णयों ने निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) के निजीकरण के साथ, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) को रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार, विशेष रूप से एक नियोजक के रूप में इसकी भूमिका में, विद्यमान नहीं था और दिनांक 20 सितंबर 2022 के साझे आक्षेपित निर्णय के अंतर्गत रिट याचिकाओं का निपटान किया, जिसे विशेष अनुमति द्वारा वर्तमान अपीलों में चुनौती दी गई है।

अपीलार्थीगण की ओर से प्रस्तुतियाँ और प्रतिविरोध:-

7. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संजय सिंघवी ने कहा कि कार्यवाही शुरू होने की तिथि पर ही उपचार मांगने का अधिकार स्पष्ट हो जाता है और यद्यपि बाद की घटनाओं पर विचार किया जा सकता है, यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि ऐसी बाद की घटनाओं को केवल न्याय को आगे बढ़ाने के लिए देखा जाना चाहिए न कि उसे विफल करने के लिए। इस संबंध में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने *पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलू बनाम मोटर और जनरल ट्रेडर्स; बेग राज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य* पर निर्भरता व्यक्त की। उन्होंने आग्रह किया कि केवल असाधारण परिस्थितियों में ही अलग दृष्टिकोण स्वीकार्य है और किसी भी स्थिति में किसी पक्षकार को *राजेश डी. दरबार और अन्य बनाम नरसिंगरावकृष्णाजी कुलकर्णी*

और अन्य में निर्धारित ऐसी बाद की घटना के कारण उसके मूल अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता है। राजेश डी. दरबार (पूर्वोक्त) के प्रासंगिक अंश, जिस पर अपीलार्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निर्भरता व्यक्त की है, नीचे उद्धृत किया गया है: -

"4. अब बाद की घटनाओं के प्रभाव को स्पष्ट किया जा सकता है। सबसे पहले, कार्रवाई के अधिकार पर इसका असर, दूसरा, राहत की प्रकृति पर और तीसरा, मूल अधिकारों को बनाने या नष्ट करने के लिए इसके महत्व पर। जहां मूल रूप से मांगी गई राहत की प्रकृति पुरानी या अनुपयोगी हो गई है या वाद के बाद या यहां तक कि अपीलार्थी चरण के दौरान होने वाली घटनाओं के कारण राहत का एक नया रूप अधिक प्रभावी होगा, यह उचित है कि राहत को अद्यतन तथ्यों के प्रकाश में ढाला, बदला या फिर से आकार दिया जाए। पैटरसन बनाम अलबामा राज्य [294 यूएस 600: 79 एल एड 1082 (1934)] (यूएस पृष्ठ 607 पर) इस स्थिति को दर्शाता है। यह महत्वपूर्ण है कि राहत या राहत में बदलाव का दावा करने वाले पक्षकार के पास वही अधिकार हों, जिससे पहला या संशोधित उपचार प्रवाहित हो सकता है। मामले के दौरान बाद की घटनाएं एक संकीर्ण श्रेणी (बाद में बताई गई) को छोड़कर उसी वाद में लागू करने योग्य मूल अधिकारों का गठन नहीं कर सकती हैं, परन्तु राहत को आकार देने के लिए न्यायसंगत क्षेत्राधिकार को प्रभावित कर सकती हैं। इसके विपरीत, जहां अधिकार पहले से ही किसी पक्षकार में निहित हैं, उन्हें बाद की घटनाओं से अकृत या नकारा नहीं जा सकता, सिवाय इसके कि विधि में बदलाव हो और इसे किसी भी स्तर पर लागू किया जाए। लछमेश्वर प्रसाद शुक्ल बनाम केशवर लाल चौधरी [1940 एफसीआर 84: एआईआर 1941 एफसी 5] इस श्रेणी में आता है। न्यायालय, जब किसी मामले के

बाध्यकारी न्याय उन्हें बाध्य करते हैं, राहत को आकार दे सकते हैं - उन्हें अद्यतन परिस्थितियों में उचित रूप से प्रासंगिक बनाने के लिए- अधिकारों को अस्वीकार नहीं कर सकते । जहां राहत विवेकाधीन है, न्यायालय अन्याय से बचने के लिए इस क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार, जहां उपचार का अधिकार, विधि के अंतर्गत, राहत प्रदान किए जाने के समय कुछ बुनियादी तथ्यों की उपस्थिति या अनुपस्थिति पर निर्भर करता है, वहां न्यायालय, यहां तक कि अपील में भी, मौलिक प्रभाव वाले ऐसे तथ्यों पर ध्यान दे सकता है। इस न्यायालय का निर्णय पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलू बनाम मोटर एंड जनरल ट्रेडर्स [(1975) 1 एससीसी 770: एआईआर 1975 एससी 1409] अपने वैधानिक ढांचे में पढ़ा जाए तो इस श्रेणी में आता है। जहां कार्रवाई का कारण अपूर्ण है, परंतु बाद की घटनाओं ने कमी को पूरा कर दिया है, न्यायालय मुकदमेबाजी की बहुलता से बचने के लिए संशोधन की अनुमति दे सकता है और कार्यवाही जारी रख सकता है, बशर्ते कि दूसरे पक्षकार का कोई पूर्वाग्रह न हो। ये सब केवल असाधारण स्थितियों में ही किया जाता है और ऐसा नहीं किया जा सकता है यदि वह विधि, जिस पर विधिक कार्यवाही आधारित है, अपनी योजना या अन्यथा कार्रवाई या राहत के कारण में इस प्रकार के बदलाव को बाधित करता है। न्यायालय की प्राथमिक चिंता कानून के न्याय को लागू करना है। किसी कानून के आधार पर निहित अधिकारों को इस न्यायसंगत सिद्धांत द्वारा छीना नहीं जा सकता (देखें वी.पी.आर.वी. चोकलिंगम चेट्टी बनाम सीताई आचे [एआईआर 1927 पीसी 252: 26 ऑल एलजे 371])।”

8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा **अशोक कुमार गुप्ता व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य** के निर्णय पर भी निर्भरता व्यक्त की गई, जिसमें

कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने संस्थापन की तिथि पर रिट कार्यवाही की स्थिरता से संबंधित मौजूदा सिद्धांतों पर विचार करने के बाद यह अभिनिर्धारित किया कि एक नियोजक जो रिट याचिका को अस्वीकार करने वाले आदेश के विरुद्ध दायर रिट अपील के लंबित रहने के दौरान निजीकृत हो गया था, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार हेतु अध्यधीन बना रहेगा। **अशोक कुमार गुप्ता** (पूर्वोक्त) के जिस प्रासंगिक अंश पर निर्भरता व्यक्त की गई है, उसे नीचे उद्धृत किया गया है: -

"32. यह किसी का मामला नहीं है कि रिट याचिका दायर किए जाने के समय वह विचारणीय नहीं थी। रिट याचिका दायर करने का कारण उस समय स्पष्ट हुआ जब प्रत्यर्थी प्राधिकरण, निश्चित रूप से, रिट क्षेत्राधिकार के अधीन था। उक्त कारण रिट याचीगण को रिट कार्यवाही में अपनी शिकायतों का न्यायनिर्णयन करवाने का निहित अधिकार प्रदान करता है। कोई भी यह प्रतिवाद नहीं कर सकता कि रिट याचीगण ने अपने आचरण से वर्तमान स्थिति उत्पन्न की है। परिस्थितियों में बदलाव याचीगण के कारण नहीं है।

33. उपरोक्त कारणों से, हमारा मानना है कि यह अपील पूर्ण रूप से स्वीकार्य है, तथा प्रत्यर्थी कंपनी की ओर से उद्भूत की गई प्रारंभिक आपत्ति विधि की दृष्टि में विद्यमान नहीं है। इसलिए, प्रत्यर्थी कंपनी द्वारा इस अपील की संधार्यता के संबंध में उद्भूत की गई उक्त प्रारंभिक आपत्ति को अस्वीकार किया जाता है।"

9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रतिवाद किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट, आदेश या निर्देश जारी करने का दायरा ब्रिटिश न्यायालयों द्वारा जारी उच्च विशेषाधिकार वाले रिटों की तुलना में बहुत व्यापक है और इस स्थिति को इस न्यायालय ने [अंडी](#)

मुक्ता सद्गुरु श्री मुक्ताजी वंदस स्वामी सुवर्ण जयंती महोत्सव स्मारक ट्रस्ट एवं अन्य बनाम वी.आर. रुदानी व अन्य के मामले में मान्यता दी है और उक्त निर्णय के बाद, भारत में न्यायालयों ने लोक कर्तव्यों का पालन करने वाले निजी व्यक्तियों को भी लगातार रिट जारी की हैं और कौशल किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में इस न्यायालय के हाल के निर्णय द्वारा इस स्थिति को और दोहराया गया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा निर्भरता व्यक्त किए गए अंडी मुक्ता (पूर्वोक्त) के प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"16. परमादेश से संबंधित विधि ने सबसे शानदार प्रगति की है। यह स्मरण किया जा सकता है कि इंग्लैंड में परमाधिकार रिट द्वारा उपचार बहुत सीमित दायरे के साथ शुरू हुआ था और कई प्रक्रियात्मक हानियों से ग्रस्त था। कठिनाइयों को दूर करने के लिए, लॉर्ड गार्डिनर (लॉर्ड चांसलर) ने विधि आयोग अधिनियम, 1965 की धारा 3(1)(इ) के अनुसरण में विधि आयोग से अनुरोध किया कि वह "एक सरल और अधिक प्रभावी प्रक्रिया विकसित करने के उद्देश्य से प्रशासनिक कृत्यों और लोप के न्यायिक नियंत्रण हेतु मौजूदा उपचारों का पुनर्विलोकन करे"। विधि आयोग ने मार्च 1976 में अपनी रिपोर्ट दी (विधि आयोग रिपोर्ट सं. 73)। इसे 1977 में न्यायालय के नियमों (आदेश 53) द्वारा लागू किया गया और 1981 में उच्चतम न्यायालय अधिनियम, 1981 की धारा 31 द्वारा वैधानिक बल प्रदान किया गया। इसने सभी पूर्ववर्ती उपायों को न्यायिक पुनर्विलोकन नामक एक कार्यवाही में मिला दिया। लॉर्ड डेनिंग इस "न्यायिक पुनर्विलोकन" के दायरे को समझाते हैं:

"एक झटके में न्यायालय जो भी राहत उचित हो, दे सकते थे। न केवल उत्प्रेषण और परमादेश, किंतु घोषणा और

व्यादेश भी। यहां तक कि नुकसानी भी। प्रक्रिया बहुत सरल और त्वरित थी। रिट के बजाय सिर्फ एक समन। कोई औपचारिक अभिवचन नहीं। साक्ष्य शपथ-पत्र के ज़रिए दिए जाते थे। नियम के मुताबिक कोई प्रतिपरीक्षा नहीं, कोई प्रकटीकरण नहीं, वगैरह। परंतु कुछ महत्वपूर्ण सुरक्षा उपाय थे। विशेष रूप से, अर्हता प्राप्त करने के लिए, आवेदक को न्यायाधीश की अनुमति लेनी पड़ती थी।

कानून को नम्य शब्दों में व्यक्त किया गया है। इससे विकास की गुंजाइश मिलती है। यह "के संबंध में" शब्दों का उपयोग करता है। ये शब्द बहुत अनिश्चित हैं। परिणाम यह है कि न्यायालय पूर्व विधि से हाथ और पैर नहीं बांधती हैं। उन्हें इसके "संबंध में" होना चाहिए। इसलिए लोक प्राधिकरण कौन हैं और कौन नहीं हैं, इस संबंध में पूर्व विधि पूर्ण रूप से बाध्यकारी नहीं है। न ही उन मामलों के विषय में पूर्व विधि है जिनके संबंध में राहत दी जा सकती है। इसका अर्थ यह है कि न्यायाधीश लोक विधि को विकसित कर सकते हैं जैसा कि वे सबसे अच्छा सोचते हैं। जो उन्होंने किया है और कर रहे हैं। [देखें समापन अध्याय आरटी. माननीय लॉर्ड डेनिंग द्वारा, पृष्ठ 122]

17. परंतु, वहाँ परमादेश की विशेषाधिकार रिट केवल लोक प्राधिकरणों को लोक कर्तव्य के प्रदर्शन हेतु बाध्य करने तक ही सीमित है। उनके लिए "लोक प्राधिकरण" का अर्थ है हर वह व्यक्ति जिसे कानून द्वारा बनाया गया है - और जिसकी शक्तियाँ और कर्तव्य कानून द्वारा परिभाषित हैं। इसलिए सरकारी विभाग, स्थानीय प्राधिकरण, पुलिस प्राधिकरण और वैधानिक उपक्रम और निगम, सभी "लोक प्राधिकरण" हैं। परंतु हमारे उच्च न्यायालयों के लिए "परमादेश की प्रकृति में" रिट जारी करने के लिए ऐसी कोई

सीमा नहीं है। अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालयों को परमाधिकार रिट की प्रकृति में रिट जारी करने के लिए व्यापक अधिकार प्रदान करता है। यह अंग्रेजी विधि से एक आश्चर्यजनक बदलाव है। अनुच्छेद 226 के अंतर्गत, रिट "किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण" को जारी की जा सकती है। इसे "किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन हेतु और किसी अन्य उद्देश्य के लिए" जारी किया जा सकता है।

10. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि न्यायसंगतता को अन्याय पर अभिभावी होना चाहिए और चूंकि अपीलार्थीगण ने एक दशक से अधिक समय तक उच्च न्यायालय में अपने मामले को लगन से आगे बढ़ाया है, इसलिए बाद की घटनाओं की न्यायसंगतता को कम करने के लिए नहीं किंतु समर्थन देने के लिए ही जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। आगे यह प्रतिवाद किया गया कि एक निजी निकाय जो संप्रभु को अनुच्छेद 14 और 16 के अंतर्गत अपने कर्मचारियों के प्रति एक लोक नियोजक के रूप में अपनी बाध्यताओं और दायित्वों को पूरा करने का वादा करता है, तो वह ऐसी बाध्यताओं का निर्वहन करने की सीमा तक एक लोक कर्तव्य निभाता है। यह रूप नहीं है, किंतु अधिरोपित किए गए कर्तव्य की प्रकृति है जो यह न्यायनिर्णीत करने के लिए प्रासंगिक है कि क्या एक रिट याचिका एक निजी निकाय के विरुद्ध होगी। इस तर्क के समर्थन में बिन्नी लिमिटेड और अन्य बनाम वी. सदाशिवन और अन्य में इस न्यायालय के निर्णय से निम्नलिखित अंशों पर निर्भरता व्यक्त की गई है: -

"23. सिविल अपील सं. 1976/1998 में प्रत्यर्थी के अधिवक्ता और वि.अनु.या. (सिविल) सं. 6016/2002 से उद्भूत सिविल अपील में अपीलार्थी के अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक प्रतिवाद किया कि निकाय की प्रकृति पर ध्यान दिए बिना, अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका संधार्य है

बशर्ते कि ऐसा निकाय लोक कृत्य या वैधानिक कृत्य का निर्वहन कर रहा हो और यह निर्णय स्वयं में लोक विधि के तत्व की झलक देता हो और उन्होंने श्री अनादि मुक्ता सद्गुरु श्री मुक्ताजी वंदस स्वामी सुवर्ण जयंती महोत्सव स्मारक ट्रस्ट बनाम वी.आर. रुदानी [(1989) 2 एससीसी 691] में इस न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की। इस मामले में, अपीलार्थी एक न्यास(ट्रस्ट) था जो गुजरात विश्वविद्यालय अधिनियम, 1949 के अंतर्गत गुजरात विश्वविद्यालय से संबद्ध एक विज्ञान महाविद्यालय चला रहा था। विश्वविद्यालय शिक्षक संघ और विश्वविद्यालय के बीच वेतनमान निर्धारण को लेकर कुछ विवाद हुआ था। अंततः कुलाधिपति ने एक निर्णय पारित किया और इस निर्णय को राज्य सरकार और विश्वविद्यालय ने स्वीकार कर लिया तथा विश्वविद्यालय को निर्दिष्ट किया कि शिक्षकों को इस निर्णय के अनुसार वेतन दिया जाए। अपीलार्थीगण ने अधिनिर्णय को कार्यान्वित करने से इनकार कर दिया और प्रत्यर्थीगण ने परमादेश की रिट की मांग करते हुए एक रिट याचिका दायर की और रिट याचिका में अपीलार्थीगण ने प्रतिवाद किया कि न्यास(ट्रस्ट) द्वारा प्रबंधित कॉलेज संविधान के अनुच्छेद 12 के दायरे में आने वाला “प्राधिकरण” नहीं था और इसलिए रिट याचिका संधार्य नहीं थी। इस अभिवाक् को अस्वीकार कर दिया गया और इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि परमादेश की रिट एक निजी व्यक्ति के विरुद्ध होगी और अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त शब्द “कोई भी व्यक्ति या प्राधिकरण” केवल राज्य के वैधानिक प्राधिकरणों और साधनों तक ही सीमित नहीं हैं और वे लोक कर्तव्य निभाने वाले किसी भी अन्य व्यक्ति या निकाय को सम्मिलित कर सकते हैं। संबंधित निकाय का स्वरूप बहुत अधिक प्रासंगिक नहीं है। जो प्रासंगिक है

वह निकाय पर अधिरोपित कर्तव्य की प्रकृति है। कर्तव्य का मूल्यांकन व्यक्ति या प्राधिकरण द्वारा प्रभावित पक्षकार के प्रति सकारात्मक बाध्यता के प्रकाश में किया जाना चाहिए। कोई फर्क नहीं पड़ता कि कर्तव्य किस माध्यम से अधिरोपित किया गया है, अगर कोई सकारात्मक बाध्यता है, तो परमादेश से इनकार नहीं किया जा सकता है।”

11. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रतिवाद किया कि जब कोई निजी नियोजक किसी लोक नियोजक के स्थान पर कदम रखता है, अर्थात् वही कार्य करता है जो पहले उसी उद्देश्य से और उसी तरीके से किया गया था, तो उसके कार्य न्यायिक पुनर्विलोकन हेतु अध्यधीन हैं। इस प्रतिविरोध के समर्थन में यूनाइटेड किंगडम कोर्ट ऑफ अपील के **रेजिना (बीयर (हैमर ट्राउट फार्म के रूप में व्यापार)) बनाम हैम्पशायर फार्मर्स मार्केट्स एंड लिमिटेड** के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की गई।
12. यह भी प्रतिवाद किया गया कि अपीलार्थीगण की ओर से रिट याचिकाएं वर्ष 2011-2013 में दायर की गई थीं और उस समय निस्संदेह नियोजक, अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 की परिधि और कार्यक्षेत्र में एक ‘राज्य’ था। रिट याचिकाएं भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 16 के अंतर्गत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के ठोस आरोपों के आधार पर अपीलार्थी कर्मचारियों के वास्तविक और सद्भाविक सेवा-संबंधी मुद्दों के साथ दायर की गई थीं। यद्यपि, रिट याचिकाओं को लगभग 10 वर्षों की अवधि के लिए नहीं लिया जा सका और उन पर निर्णय नहीं लिया जा सका और इस प्रकार, अपीलार्थीगण को समय पर उनके वास्तविक दावों के निपटान न करने के लिए अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता है। उन्होंने आग्रह किया कि इस प्रकार अपीलार्थीगण राहत के हकदार हैं, जैसा कि रिट याचिकाओं में दावा किया गया है, क्योंकि नियोजक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल), निर्विवाद रूप से रिट

याचिकाओं के गठन के समय रिट क्षेत्राधिकार के अधीन था और यह निजीकरण के बाद भी लोक कर्तव्यों का निर्वहन करना जारी रखता है।

13. इन आधारों पर अपीलार्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने न्यायालय से प्रार्थना की कि अपीलों को स्वीकार किया जाए; आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाए तथा रिट याचिकाओं को गुणागुण के आधार पर न्यायनिर्णयन हेतु उच्च न्यायालय को प्रतिपेक्षित किया जाए।

प्रत्यर्थी सं. 3-एआईएल की ओर से प्रस्तुतियां एवं प्रतिविरोध:-

14. प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अभिषेक मनु सिंघवी ने प्रतिवाद किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 को पढ़ने से ही स्पष्ट रूप से पता चल जाएगा कि उच्च न्यायालय द्वारा रिट जारी करने के समय 'क्षेत्राधिकार का परीक्षण' अवलंब लिया जाना/लागू किया जाना है। रिट जारी करने के चरण में ही उच्च न्यायालय वास्तव में अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, और इसलिए, उस समय उच्च न्यायालय को यह संतुष्ट होना चाहिए कि जिस व्यक्ति को वह रिट जारी कर रहा है, वह असाधारण रिट क्षेत्राधिकार हेतु अध्यधीन है।
15. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने ***कल्पना योगेश धगत बनाम रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड*** के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की, जिसमें 2002 में भारतीय पेट्रोकेमिकल कॉर्पोरेशन लिमिटेड ("आईपीसीएल") के विरुद्ध एक रिट याचिका दायर की गई थी, जिस पर वर्ष 2016 में निर्णय लिया गया। इस बीच, आईपीसीएल का निजीकरण कर दिया गया और 2007 में रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड (आरआईएल) ने इसका अधिग्रहण कर लिया। विचार हेतु जो प्रासंगिक मुद्दा सामने आया, वह यह था कि क्या आईपीसीएल के विरुद्ध दायर रिट याचिका इसके निजीकरण के बाद भी संधार्य थी। गुजरात उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि रिट

याचिका संधार्य नहीं थी। **कल्पना योगेश धगत** (पूर्वोक्त) के प्रासंगिक अंश पर निर्भरता व्यक्त की गई है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है: -

"53. इस मामले में, रिट आवेदन पर अंतिम सुनवाई से पहले ही आई.पी.सी.एल. की स्थिति बदल गई। आई.पी.सी.एल. एक सार्वजनिक क्षेत्र का उद्यम है, जो अब अस्तित्व में नहीं है, इसे रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड ने अपने अधीन कर लिया है। किसी भी समय, आई.पी.सी.एल. के रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड के साथ विलय की वैधता और विधिमान्यता किसी भी न्यायालय के समक्ष नहीं आई। ऐसी परिस्थितियों में, मुझे यह अभिनिर्धारित करना बेहद मुश्किल लगता है कि यह रिट आवेदन संधार्य है और वह भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 नियम 10 के प्रावधानों को लागू करके। आखिरकार, पूरा मुद्दा इस बात पर आकर खत्म होता है कि किसी निजी संस्था के विरुद्ध रिट कैसे जारी की जा सकती है।"

16. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **असुलाल लोया बनाम भारत संघ एवं अन्य** में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की, जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश वर्ष 1991 में भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड (बाल्को) के विरुद्ध दायर रिट याचिका पर विचार करते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे और 2008 में अर्थात् 2001 में बाल्को के निजीकरण के बाद निर्णय दिया था। उक्त निर्णय से संबंधित अंश, जिन पर निर्भरता व्यक्त की गई है, नीचे उद्धृत हैं: -

"3. यह बात पूर्ण रूप से सुस्थापित है कि एक निजी लिमिटेड कंपनी या एक सार्वजनिक लिमिटेड कंपनी के विरुद्ध रिट याचिका स्वीकार्य नहीं है, जिसमें राज्य का व्यापक नियंत्रण नहीं है। बिन्नी लिमिटेड बनाम वी.

सदाशिवन, (2005) 6 एससीसी 657 में अभिलिखित की गई, में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक रिट याचिका सामान्य रूप से लोक प्राधिकरणों के विरुद्ध जारी की जाती है और निजी प्राधिकरणों के विरुद्ध भी जारी की जा सकती है जब वे लोक कृत्यों का निर्वहन कर रहे हों और जिस निर्णय को ठीक करने या लागू करने की मांग की जा रही है, वह लोक कृत्य के निर्वहन में होना चाहिए। वर्तमान मामले में, सम्मिलित मुद्दे और प्रश्न लोक कृत्यों से संबंधित नहीं हैं।

10. इन परिस्थितियों में, वर्तमान रिट याचिका मामले के गुणागुण पर विचार किए बिना खारिज की जाती है, जिसमें प्रत्यर्थी कंपनी द्वारा उद्भूत प्रारंभिक आपत्ति को बरकरार रखा गया है कि यह राज्य नहीं है और इसलिए रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं है। यद्यपि, यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता अपनी शिकायत के निवारण हेतु किसी भी मंच से संपर्क करने के लिए स्वतंत्र है, यदि ऐसा सलाह दी जाती है और इन कार्यवाहियों में उनके द्वारा व्यतीत समय सीमा के उद्देश्य से ध्यान में रखा जाएगा। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, जुर्माने के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

”

17. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि कौशल किशोर (पूर्वोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि गैर-राज्य संस्थाओं के विरुद्ध रिट जारी नहीं की जा सकती जो कोई 'लोक कृत्य' नहीं कर रही हैं। उन्होंने आगे बताया कि यह अपीलार्थीगण का स्वीकार किया गया मामला है कि निजीकरण के बाद, प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) कोई 'लोक कृत्य' नहीं करता है और किसी भी मामले में

विशुद्ध रूप से वाणिज्यिक उद्देश्य से निजी एयरलाइन चलाना कभी भी 'लोक कृत्य' निभाने के समान नहीं हो सकता है।

18. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यह मुद्दा 'अधिकार' का नहीं किंतु 'उपचार' का है, अर्थात् अपीलार्थीगण द्वारा दायर रिट याचिका को सुनवाई के आधार पर खारिज करने से अपीलार्थीगण के अधिकारों का हनन नहीं होगा और केवल उनके विवाद के न्यायनिर्णयन हेतु मंच बदल जाएगा। भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 या 16 का कोई भी कथित उल्लंघन केवल राहत का दावा करने का आधार है जिसे किसी भी अन्य उचित मंच के समक्ष उठाया जा सकता है।
19. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलार्थीगण के अधिकार, यदि कोई हों, उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें दिए गए विशिष्ट स्वतंत्रता द्वारा संरक्षित हैं और यदि सक्षम क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय उनके पक्ष में निर्णय देता है, तो वह नियोजक-प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) के विरुद्ध लागू होगा।
20. उन्होंने आगे प्रतिवाद किया कि अपीलार्थीगण कर्मचारियों ने काफी विलंब के बाद रिट न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, क्योंकि वादहेतुक 2007 से 2010 के बीच उद्भूत हुआ था और रिट याचिकाएं 2011 से 2013 के बीच बॉम्बे उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ के समक्ष दायर की गईं और न्यायालय से अपीलों को खारिज करने की प्रार्थना की गई।
21. हमने पक्षकारगण के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर गहन विचार किया है तथा आक्षेपित निर्णय और अभिलिखित प्रस्तुत सामग्री का अध्ययन किया है।

न्यायनिर्णयन हेतु प्रस्तुत विधि के प्रश्न: -

22. इस न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन हेतु प्रस्तुत विधिक प्रश्न इस प्रकार हैं:

- (i) क्या प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) को एक निजी कॉर्पोरेट इकाई द्वारा ग्रहण किए जाने के बाद उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अधीन किया जा सकता था?
- (ii) क्या इस मामले में अपीलार्थीगण को इस तथ्य के कारण अयोग्य ठहराया जा सकता है कि उनकी रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान नियोजक की प्रकृति सरकारी इकाई से निजी इकाई में बदल गई?
- (iii) क्या रिट याचिका के निपटान में विलंब को निजी संस्था के विरुद्ध भी अपीलार्थीगण के दावे को कायम रखने के लिए वैध आधार माना जा सकता है?

चर्चा और निष्कर्ष :-

- 23. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के प्रस्तुतिकरण का मुख्य जोर **अशोक कुमार गुप्ता (पूर्वोक्त)** के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय पर आधारित था, जिसमें पैरा 32 (पूर्वोक्त से पुनः प्रस्तुत) में अभिनिर्धारित किया गया था कि वादहेतुक उस समय उद्भूत हुआ जब प्राधिकरण रिट क्षेत्राधिकार के अधीन था।
- 24. **अशोक कुमार गुप्ता के मामले (पूर्वोक्त)** को गुजरात उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने **कल्पना योगेश धगत (पूर्वोक्त)** के मामले में प्रतिष्ठित किया था। उक्त निर्णय के प्रासंगिक अंश तत्काल संदर्भ हेतु नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं: -

"50. इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ (अशोक कुमार गुप्ता बनाम भारत संघ, (2007) एससीसी ऑनलाइन कैल 264) द्वारा वर्णित उक्ति को इस मामले में लागू किया जाता है, तो संभवतः रिट आवेदन को संधार्य कहा जा सकता है।

यद्यपि, कुछ विशिष्ट विशेषताएं हैं, जो मेरे विचार में, महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे मामले की जड़ तक जाती हैं। सबसे पहले, कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष मामले में जिस समय रिट आवेदन अस्वीकार किया गया था, उस समय भी कंपनी एक सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम थी; दूसरे, जब अपील दायर की गई थी, तब भी यह एक सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम थी; और तीसरी और सबसे महत्वपूर्ण बात, निजीकरण का औचित्य और वैधता से संबंधित मुद्दा उच्चतम न्यायालय की वृहत न्यायपीठ के समक्ष लंबित था।”

(जोर दिया गया)

25. **कल्पना योगेश धगत** (पूर्वोक्त) के मामले में, गुजरात उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड (आरआईएल) के विरुद्ध रिट याचिका की संधार्यता के विषय में प्रारंभिक आपत्ति को बरकरार रखा। उक्त निर्णय के प्रासंगिक अंश नीचे दिए गए हैं: -

"19. यद्यपि, परमादेश का दायरा लागू किए जाने वाले कर्तव्य की प्रकृति से निर्धारित होता है, न कि उस प्राधिकरण की पहचान से जिसके विरुद्ध यह मांगा गया है। यदि निजी निकाय लोक कृत्य कर रहा है, तो लोक विधि उपचार लागू किया जा सकता है। सार्वजनिक निकाय पर लगाया गया कर्तव्य या तो वैधानिक हो सकता है या अन्यथा और ऐसी शक्ति का स्रोत अप्रासंगिक है, परन्तु फिर भी, ऐसी कार्रवाई में एक लोक विधि तत्व होना चाहिए। प्रत्यर्थी रिलायंस पेट्रो इन्वेस्टमेंट लिमिटेड का जनता से कोई लेना-देना नहीं है। यह पेट्रोलियम उत्पादों के कारोबार में लगी एक कंपनी है। न तो संघ और न ही 'राज्य' का प्रत्यर्थी कंपनी पर कोई नियंत्रण है। कंपनी को

चलाने के उद्देश्य से संघ या राज्य सरकार द्वारा अनुज्ञप्ति जारी करने मात्र से यह किसी "राज्य" का साधन या किसी "राज्य" का अभिकरण नहीं बन जाएगा।

21. अनुच्छेद 226 की भाषा निस्संदेह बहुत व्यापक है। इसमें कहा गया है कि रिट “किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को” और “भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रवर्तन हेतु और किसी अन्य उद्देश्य के लिए” जारी की जा सकती है। यद्यपि, अनुच्छेद 226 में उपरोक्त भाषा की शाब्दिक व्याख्या नहीं की जा सकती और इसे शाब्दिक रूप से नहीं समझा जा सकता। न्यायालय को अनुच्छेद 226 की व्याख्या करते समय व्याख्या के शाब्दिक नियम को लागू नहीं करना चाहिए। यदि हम अनुच्छेद 226 की भाषा को शाब्दिक रूप से लें तो इसका अर्थ यह होगा कि रिट किसी भी निजी व्यक्ति को या निजी विवादों के निपटान हेतु भी जारी की जा सकती है। यदि हम “किसी अन्य उद्देश्य के लिए” शब्द की शाब्दिक व्याख्या करते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि रिट किसी भी उद्देश्य के लिए जारी की जा सकती है, जैसे निजी विवादों का निर्णय करने के लिए, तलाक देने के लिए, उत्तराधिकार प्रमाणपत्र आदि के लिए। इसी प्रकार, यदि हम “किसी भी व्यक्ति को” शब्दों की शाब्दिक व्याख्या करते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि रिट निजी व्यक्तियों को भी जारी की जा सकती है। यद्यपि, उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों को ध्यान में रखते हुए यह सही अर्थ नहीं होगा जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि रिट केवल राज्य या राज्य के परिकरण के विरुद्ध ही होगी जैसे [चंद्र मोहन खन्ना बनाम एन.सी.ई.आर.टी.](#), (1991) 4 एससीसी 578, [टेकराज वसंधी बनाम भारत संघ](#), (1988) 1 एससीसी 236: एआईआर

1988 एससी 469, महाप्रबंधक, किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड बनाम शत्रुघ्न निषाद, (2003) 8 एससीसी 639, फेडरल बैंक लिमिटेड बनाम सागर थॉमस एंड कंपनी, (2003) 10 एससीसी 733, प्रदीप कुमार विश्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीवविज्ञान संस्थान ((2002) 5 एससीसी 111) आदि। महाप्रबंधक, किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड बनाम शत्रुघ्न निषाद (पूर्वोक्त) में, उच्चतम न्यायालय ने देखा कि एक रिट एक निजी निकाय के विरुद्ध तभी दायर की जा सकती है जब उसने कोई लोक कृत्य किया हो या कोई लोक कर्तव्य निभाया हो। 'आर.आई.एल.' कोई लोक कृत्य नहीं कर रहा है और न ही कोई लोक कर्तव्य निभा रहा है। यह केवल एक वाणिज्यिक गतिविधि कर रहा है। इसलिए, इसके विरुद्ध कोई रिट दायर नहीं है।

58. यदि उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त कथन को इस मामले में लागू किया जाता है, तो भी इस न्यायालय के लिए यह मानना कठिन है कि चूंकि रिट आवेदक परिस्थितियों में परिवर्तन हेतु जिम्मेदार नहीं है और रिट आवेदन उस समय संधार्य था जब इसे दायर किया गया था, इसलिए रिट आवेदक के मौलिक अधिकारों को लागू करने के उद्देश्य से एक निजी संस्था को रिट जारी की जा सकती है, जिसका कथित रूप में किसी कंपनी द्वारा अतिलंघन किया गया है, जो किसी समय सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम था और अब अस्तित्व में नहीं है। यह मानना भी विधिक रूप से स्वीकार्य नहीं है कि चूंकि आई.पी.सी.एल. भारत सरकार का उपक्रम था, इसलिए भारत संघ के विरुद्ध रिट जारी की जा सकती है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम का कोई कर्मचारी अपने आप में सिविल सेवक या भारत संघ का

कर्मचारी नहीं होगा। अधिक से अधिक उसे सरकार के स्वामित्व वाली कंपनी का कर्मचारी कहा जा सकता है। इसलिए, आई.पी.सी.एल. की अनवेक्षा करते हुए भी, इस स्तर पर भारत सरकार पर भी कोई दायित्व नहीं लगाया जा सकता है।

59. मैं श्री भट्ट के इस कथन से प्रभावित नहीं हूँ कि रिट आवेदक के पास इस न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार का अवलंब लेने के अलावा कोई अन्य वैकल्पिक उपाय नहीं है। श्री भट्ट के अनुसार, चूँकि मूल रिट आवेदक अर्थात् कर्मचारी की मृत्यु हो चुकी है, इसलिए विधिक उत्तराधिकारियों के लिए सेवा से पदच्युति के आदेश को चुनौती देने के उद्देश्य से घोषणा के लिए सिविल वाद दायर करना विधिक रूप से अनुचित होगा। अभिलिखित मौजूद विधिक उत्तराधिकारी निश्चित रूप से यह घोषणा करने के लिए सिविल वाद दायर कर सकते हैं कि विभागीय जाँच निष्पक्ष और पारदर्शी तरीके से नहीं की गई थी और पदच्युति का परिणामी आदेश अवैध है। परिसीमा अधिनियम की धारा 14 भी स्थिति को बचा सकती है। परिसीमा अधिनियम की धारा 14 स्वयं वादों के लिए है।”

(जोर दिया गया)

26. इसी संविवाद पर दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने *असुलाल लोया* (पूर्वोक्त) के मामले में भी विचार किया था, जो भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड (बाल्को) द्वारा रिट याचिकाकर्ता-कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने से जुड़ा मामला था, जो पहले भारत सरकार का उपक्रम था और त्रिपक्षीय शेयर क्रय करार के अनुसार इसका निजीकरण किया गया था। कर्मचारी-रिट याचिकाकर्ता ने अपनी पदच्युति को चुनौती देने के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की, जिसमें इस आधार पर रिट याचिका की संधार्यता के

विषय में प्रारंभिक आपत्ति उद्भूत की गई थी कि कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, कंपनी के मालिक बदल गए थे और अब इसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत परिभाषित 'राज्य' या 'अन्य प्राधिकरण' की विशेषता नहीं रह गई थी। रिट याचिकाकर्ता का दावा था कि याचिका दायर किए जाने की तिथि पर प्रत्यर्थी के विरुद्ध संधार्य थी। रिट याचिकाकर्ता के अनुसार, पक्षकारगण के अधिकार और बाध्यता मुकदमे की शुरुआत की तिथि से ही स्पष्ट हो जाते हैं और इस प्रकार, राहत का निर्णय उस तिथि के संदर्भ में किया जाना चाहिए जिस दिन पक्षकार न्यायालय के द्वार पर आया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पैरा 10 (पूर्वोक्त उद्धृत) में रिट याचिका की संधार्यता के विरुद्ध उद्भूत की गई प्रारंभिक आपत्ति को बरकरार रखा और रिट याचिकाकर्ता को रिट याचिका में उद्भूत की गई शिकायतों को व्यक्त करने के लिए सिविल न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए बाध्य किया।

27. **तरुण कुमार बनर्जी** (पूर्वोक्त) मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया था, जैसा कि नीचे उल्लेख किया गया है: -

"1. दोनों याचिकाएं भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड के विरुद्ध दायर की गई थीं, जब याचिकाएं दायर की गई थीं, तब यह भारत सरकार का उद्यम था। प्रत्यर्थी ने हमें बताया कि उन्होंने दिनांक 22-3-1996 को एक शपथपत्र दायर किया था, जिसमें बताया गया था कि भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड का निजीकरण कर दिया गया है और 50% से अधिक शेयर स्टर्लिट इंडस्ट्रीज इंडिया लिमिटेड को हस्तांतरित कर दिए गए हैं और इसके परिणामस्वरूप भारत एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड एक राज्य नहीं है और इस न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार हेतु अध्यधीन नहीं है।

2. इस प्रस्तुति को ध्यान में रखते हुए हम दोनों याचिकाओं का निपटान करते हैं और याचिकाकर्ता को यह छूट देते हैं कि सलाह दी जाए, तो वह अपनी शिकायत के निवारण हेतु किसी अन्य मंच पर जा सकता है। याचिकाकर्ता द्वारा इन कार्यवाहियों को आगे बढ़ाने में लगाया गया समय सीमा के उद्देश्य से ध्यान में रखा जाएगा, यदि याचिकाकर्ता कोई ऐसा उपाय चुनता है जहां सीमा का प्रश्न प्रासंगिक होगा।”

(जोर दिया गया)

28. *इसके अलावा, बेग राज सिंह (पूर्वोक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की: -*

“7. एक याचिकाकर्ता, हालांकि विधि में राहत पाने का हकदार है, फिर भी बाद की या मध्यवर्ती घटनाओं, अर्थात् मुकदमे की शुरुआत और निर्णय की तिथि के बीच की घटनाओं के कारण इक्विटी में राहत से वंचित किया जा सकता है। याचिकाकर्ता को जिस राहत का हकदार माना जाता है, वह समय व्यतीत होने के कारण निरर्थक हो सकती है या विधि में बदलाव के कारण अनुदत्त होने में असमर्थ हो सकती है। ऐसी अन्य परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं जो याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थीगण को कोई राहत प्रदान करना अनुचित बनाती हैं क्योंकि निर्णय की तिथि पर इक्विटी के विरुद्ध असमानताओं को तौलने पर संतुलन याचिकाकर्ता के विरुद्ध झुक जाता है....”

(जोर दिया गया)

29. इस प्रकार, यह देखा गया है कि देश भर के विभिन्न उच्च न्यायालयों ने विचार हेतु प्रस्तुत प्रासंगिक प्रश्न पर समय के साथ एक सुसंगत दृष्टिकोण अपनाया है कि बाद की घटना अर्थात् सरकारी कंपनी का विनिवेश और एक निजी कंपनी में इसका हस्तांतरण कंपनी को भारत

के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन होने से मुक्त कर देगा, भले ही कक्षीकार ने उस समय न्यायालय में प्रवेश किया हो जब नियोजक एक सरकार था। एकमात्र अपवाद **अशोक कुमार गुप्ता** (पूर्वोक्त) में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ का एकमात्र निर्णय है, जिसे गुजरात उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने **कल्पना योगेश धगत** (पूर्वोक्त) के मामले में अलग रखा था और ठीक ही, हमारी राय में, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि **कल्पना योगेश धगत** (पूर्वोक्त) के निर्णयों में (गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा) लिया गया दृष्टिकोण; **असुलाल लोया** (पूर्वोक्त) (दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा) और **तरुण कुमार बनर्जी** (पूर्वोक्त) (बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा) इस विधिक मुद्दे पर सही व्याख्या है और हम विधि की उक्त प्रतिपादना को पूर्ण अनुमति देते हैं।

30. हम ऊपर उल्लिखित विधि के तीन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देना चाहेंगे।
31. भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में “राज्य” या “अन्य प्राधिकरण” घोषित किए जाने के लिए, इसे इस न्यायालय के कई निर्णयों में निर्धारित सुविख्यात मापदंडों के अंतर्गत आना होगा। इस संबंध में हम, [प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ केमिकल बायोलॉजी](#)¹ के मामले का संदर्भ ले सकते हैं, जिसमें इस न्यायालय ने इस बिंदु पर पिछले निर्णयों पर विचार करने के बाद निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

"27. *रमण* [(1979) 3 एससीसी 489: एआईआर 1979 एससी 1628] को नोट किया गया और विस्तार से अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया तथा यह निर्धारित करने के लिए प्रस्तावित परीक्षण कि कब किसी निगम को

¹ [2002] 3 एससीआर 100 : (2002) 5 एससीसी 111

सरकार का परिकरण या अभिकरण कहा जा सकता है, को चुना गया और निम्नानुसार संक्षेपित किया गया: (एससीसी पृष्ठ 737, पैरा 9)

- (1) एक बात स्पष्ट है कि यदि निगम की सम्पूर्ण शेयर पूंजी सरकार के पास है, तो इससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि निगम सरकार का एक परिकरण या अभिकरण है। (एससीसी पृष्ठ 507, पैरा 14)
- (2) जहां राज्य की वित्तीय सहायता इतनी अधिक हो कि निगम का लगभग पूरा व्यय पूरा हो जाए, तो इससे यह संकेत मिलता है कि निगम में सरकारी रूप निहित है। (एससीसी पृष्ठ 508, पैरा 15)
- (3) यह भी एक प्रासंगिक कारक हो सकता है... कि क्या निगम को एकाधिकार का दर्जा प्राप्त है जो राज्य द्वारा प्रदत्त है या राज्य द्वारा संरक्षित है। (एससीसी पृष्ठ 508, पैरा 15)
- (4) गहन एवं व्यापक राज्य नियंत्रण का अस्तित्व इस बात का संकेत दे सकता है कि निगम एक राज्य अभिकरण या परिकरण है। (एससीसी पृष्ठ 508, पैरा 15)
- (5) यदि निगम के कार्य लोक महत्व के हैं और सरकारी कार्यों से निकटता से संबंधित हैं, तो निगम को सरकार के परिकरण या अभिकरण के रूप में वर्गीकृत करने में यह एक प्रासंगिक कारक होगा। (एससीसी पृष्ठ 509, पैरा 16)
- (6) 'विशेष रूप से, यदि सरकार का कोई विभाग किसी निगम को हस्तांतरित कर दिया जाता है, तो यह इस निष्कर्ष का समर्थन करने वाला एक सशक्त

कारक होगा' कि निगम सरकार का एक परिकरण या अभिकरण है। (एससीसी पृष्ठ 510, पैरा 18)"

40. अंततः जो तस्वीर उभर कर आती है वह यह है कि अजय हसिया [अजय हसिया बनाम खालिद मुजीब सेहरावर्दी, (1981) 1 एससीसी 722: 1981 एससीसी (एलएंडएस) 258] में तैयार किए गए परीक्षण सिद्धांतों का एक कठोर समूह नहीं हैं जिससे यदि कोई निकाय उनमें से किसी एक के अंतर्गत आता है तो उसे पूर्व परिकल्पना के अनुसार अनुच्छेद 12 के अर्थ में एक राज्य माना जाना चाहिए। प्रत्येक मामले में सवाल यह होगा कि क्या स्थापित संचयी तथ्यों के आलोक में, निकाय वित्तीय, कार्यात्मक और प्रशासनिक रूप से सरकार के अधीन है या उसके नियंत्रण में है। ऐसा नियंत्रण संबंधित निकाय हेतु विशिष्ट होना चाहिए और व्यापक होना चाहिए। यदि यह पाया जाता है तो निकाय अनुच्छेद 12 के भीतर एक राज्य है। दूसरी ओर, जब नियंत्रण केवल नियामक है चाहे वह कानून के अंतर्गत हो या अन्यथा, यह निकाय को राज्य बनाने के लिए काम नहीं करेगा।

(जोर दिया गया)

32. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि भारत सरकार ने अपना 100% हिस्सा टैलेस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड कंपनी को हस्तांतरित कर दिया है, जिससे निजी इकाई पर उसका कोई प्रशासनिक नियंत्रण या गहन व्यापक नियंत्रण समाप्त हो गया है और इसलिए, विनिवेश के बाद कंपनी को निजी कंपनी द्वारा ग्रहण किए जाने के बाद अब राज्य नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार, निस्संदेह, प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल)

अपने विनिवेश के बाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के भीतर एक राज्य या उसका साधन नहीं रह गया है।

33. एक बार जब प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में राज्य की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है, तो इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं किया जा सकता है।
34. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 को सरलता से पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि उच्च न्यायालय को भारतीय संविधान के भाग-III द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन हेतु तथा किसी अन्य उद्देश्य के लिए अपने प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को, जिसमें उपयुक्त मामलों में कोई सरकार भी शामिल है, निर्देश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति प्राप्त है, जिसमें बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, उत्प्रेषण, अधिकार-पृच्छा और प्रतिषेध की प्रकृति के रिट भी शामिल हैं।
35. इस न्यायालय ने अंडी मुक्ता (पूर्वोक्त) के मामले में अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त शब्द 'प्राधिकरण' की व्याख्या की है, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:

"17. यद्यपि, वहाँ परमादेश की परमाधिकार रिट केवल लोक प्राधिकरणों को लोक कर्तव्य के प्रदर्शन हेतु बाध्य करने तक ही सीमित है। उनके लिए 'लोक प्राधिकरण' का अर्थ है हर वह व्यक्ति जिसे कानून द्वारा बनाया गया है - और जिसकी शक्तियाँ और कर्तव्य कानून द्वारा परिभाषित हैं। इसलिए सरकारी विभाग, स्थानीय प्राधिकरण, पुलिस प्राधिकरण और वैधानिक उपक्रम और निगम, सभी 'लोक प्राधिकरण' हैं। परंतु हमारे उच्च न्यायालयों के लिए 'परमादेश की प्रकृति में' रिट जारी करने के लिए ऐसी कोई

सीमा नहीं है। अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालयों को विशेषाधिकार रिट की प्रकृति में रिट जारी करने के लिए व्यापक अधिकार प्रदान करता है। यह अंग्रेजी विधि से एक उल्लेखनीय बदलाव है। अनुच्छेद 226 के अंतर्गत, रिट 'किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण' को जारी की जा सकती है। इसे 'किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन हेतु और किसी अन्य उद्देश्य के लिए' जारी किया जा सकता है।

20. अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त शब्द 'प्राधिकरण' को अनुच्छेद 12 में प्रयुक्त शब्द की तरह ही उदार अर्थ प्राप्त होना चाहिए। अनुच्छेद 12 केवल अनुच्छेद 32 के अंतर्गत मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है। अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालयों को मौलिक अधिकारों के साथ-साथ गैर-मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन हेतु रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करता है। इसलिए अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त शब्द 'कोई व्यक्ति या प्राधिकरण' केवल राज्य के वैधानिक प्राधिकरणों और साधनों तक ही सीमित नहीं हैं। वे लोक कर्तव्य निभाने वाले किसी अन्य व्यक्ति या निकाय को सम्मिलित कर सकते हैं। संबंधित निकाय का स्वरूप बहुत अधिक प्रासंगिक नहीं है। जो प्रासंगिक है वह निकाय पर लगाए गए कर्तव्य की प्रकृति है। कर्तव्य का मूल्यांकन व्यक्ति या प्राधिकरण द्वारा प्रभावित पक्षकार के प्रति सकारात्मक बाध्यता के प्रकाश में किया जाना चाहिए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कर्तव्य किस माध्यम से अधिरोपित किया गया है। यदि कोई सकारात्मक बाध्यता मौजूद है तो परमादेश को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।”

(जोर दिया गया)

36. इसके अलावा, फेडरल बैंक लिमिटेड बनाम सागर थॉमस के मामले में, इस न्यायालय ने निकायों/व्यक्तियों की श्रेणियां निर्धारित कीं जो उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे, जो इस प्रकार हैं:

"18. उपरोक्त संदर्भित निर्णयों से यह स्थिति उभर कर आती है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका (i) राज्य (सरकार); (ii) किसी प्राधिकरण; (iii) किसी सांविधिक निकाय; (iv) राज्य के किसी परिकरण या अभिकरण; (v) किसी कंपनी के विरुद्ध, जो राज्य द्वारा वित्तपोषित और स्वामित्व में है; (vi) किसी निजी निकाय के विरुद्ध, जो मुख्यतः राज्य के वित्त पोषण पर चलता है; (vii) किसी निजी निकाय के विरुद्ध, जो लोक कर्तव्य या सार्वजनिक प्रकृति की सकारात्मक बाध्यता का निर्वहन करता है; और (viii) किसी व्यक्ति या निकाय के विरुद्ध, जो किसी कानून के अंतर्गत किसी कार्य का निर्वहन करने के लिए दायी है, उसे ऐसा सांविधिक कार्य करने के लिए बाध्य करने के लिए, विचारणीय हो सकती है।"

37. प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल), जो कि पूर्ववर्ती सरकारी एयरलाइन है, को निजी कंपनी टैलेस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड ने अपने अधीन कर लिया है, निस्संदेह, वह कोई लोक कर्तव्य नहीं निभा रही है, क्योंकि उसने सरकारी कंपनी एयर इंडिया लिमिटेड को वाणिज्यिक परिचालन के उद्देश्य से अपने अधीन कर लिया है, और इस प्रकार प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) के विरुद्ध कोई रिट याचिका विचारणीय नहीं है। प्रश्न सं. 1 का निर्णय उपरोक्त तरीके से किया जाता है।

38. रिट जारी करने का प्रश्न तभी उद्भूत होगा जब रिट याचिका पर निर्णय लिया जा रहा हो। इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग का मुद्दा केवल उस तिथि

पर उद्भूत होगा जब रिट याचिकाओं पर विचार और निर्णय हेतु विचार किया जाएगा। प्रत्यर्थी सं. 3 (एआईएल) - नियोजक रिट याचिकाओं को दायर करने की तिथि पर एक सरकारी संस्था थी, जिस पर निर्णय काफी विलंब से हुआ, जिसके बाद कंपनी का विनिवेश हो चुका था और एक निजी कंपनी द्वारा उसका अधिग्रहण किया जा चुका था। चूंकि, प्रत्यर्थी सं.3 नियोजक का विनिवेश हो चुका था और उसने कोई लोक कृत्य न करने वाली एक निजी संस्था का रूप ग्रहण कर लिया था, इसलिए उच्च न्यायालय ऐसी निजी संस्था को रिट जारी करने के लिए असाधारण रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता था। विद्वान खंड न्यायपीठ ने अपीलार्थीगण के उपचार मांगने के अधिकारों की रक्षा करने का ध्यान रखा है और इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थीगण मामले में अनुपयुक्त रहे हैं। केवल इतना है कि अपीलार्थीगण को अपने उपचार की मांग करने के लिए किसी अन्य मंच से संपर्क करना होगा। इस प्रकार, प्रश्न सं. 2 अपीलार्थीगण के विरुद्ध निर्णीत किया जाता है।

39. किसी भी प्रकार से, रिट याचिकाओं के निपटान में विलंब रिट याचिकाओं को जारी रखने और बनाए रखने का आधार नहीं हो सकती थी क्योंकि जिस मंच अर्थात् उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएं स्थापित की गई थीं, वह निजी प्रत्यर्थी को रिट जारी नहीं कर सकता था, जो मध्यवर्ती अवधि में बदल गया था। इसलिए, प्रश्न सं. 3 भी अपीलार्थीगण के विरुद्ध निर्णीत किया जाता है।
40. परिणामस्वरूप, बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा अपीलार्थीगण को न्यायोचित राहत देने से इनकार करने तथा उन्हें अपनी शिकायतें व्यक्त करने के लिए उचित मंच पर जाने के लिए कहने का दृष्टिकोण ही एकमात्र न्यायसंगत तथा स्वीकार्य दृष्टिकोण है।

41. हम यह भी नोट कर सकते हैं कि अपीलार्थीगण ने 2011 और 2013 के बीच विभिन्न सेवा-संबंधी मुद्दों के संबंध में उपरोक्त रिट याचिकाएं दायर करके शिकायतें उद्भूत की, जो 2007 और 2010 के बीच अपीलार्थीगण और तत्कालीन नियोजक के बीच उद्भूत हुईं। इसलिए, यह स्पष्ट है कि रिट याचिकाएं उस समय से काफी विलंब से शुरू हुईं, जब अपीलार्थीगण को वादहेतुक प्रोद्भूत हुआ था।
42. यह भी ध्यान देने योग्य है कि बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अपीलार्थीगण को न केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायसंगत राहत देने से इनकार कर दिया, किंतु साथ ही, उचित मंच के समक्ष विधिक राहत का दावा करने के अपीलार्थीगण के अधिकारों को संरक्षित किया गया है।
43. हम आगे यह भी कह सकते हैं कि यदि अपीलार्थीगण बंबई उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा की गई टिप्पणियों के आलोक में विधि के अनुसार अपनी शिकायतों को व्यक्त करने के लिए उचित मंच का चयन करते हैं, तो परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14, सीमा के मुद्दे के संबंध में बचाव में आएगी।
44. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमें बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण अपनाने का कोई कारण नहीं मिलता है, जिसमें अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत रिट याचिकाओं की संधार्यता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति को बरकरार रखा गया था और इसे संधार्य न होने के कारण अस्वीकार कर दिया गया था।
45. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, अपील खारिज की जाती है। जुर्माने के संबंध में कोई आदेश नहीं है।
46. लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का निपटान किया जाएगा।

द्वारा तैयार किए गए हेडनोट्स: अंकित ज्ञान

मामले का परिणाम:
अपील खारिज।

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Disclaimer: The translated judgment in vernacular language is meant for the restricted use of the litigant to understand it in his/her language and may not be used for any other purpose for all practical and official purposes, the English version of the judgment shall be authentic and shall hold the field for the purpose of execution and implementation.